

किं तु श्रीसंजयन्तस्य प्रतिमाग्रे सुभक्तितः । नाना सद्गन्धधूपाद्यैः स्त्रीणां तत्सिद्धिरस्तु वै ॥१२५॥
 इत्युक्त्वा तं विमुच्याशु सुधी नागाधिपस्तदा । जगाम स्थानकं स्वस्य मुनिभक्तिपरायणः ॥१२६॥
 इत्युत्कटतपोलक्ष्मीं भुक्त्वा लक्ष्मीं च शाश्वतीम् । संजयन्तमुनिः प्राप्तः सोऽस्माकं सत्सुखं क्रियात् ॥१२७॥
 अर्हत्पादसरोजयुग्ममधुलिट् सद्बोधसिन्धुः सुधीः सच्चारित्रविचित्ररत्ननिचयः श्रीकुन्दकुन्दान्वये ।
 श्रीभट्टारकमल्लिभूषणगुरुः संसारनिस्तारकः कुर्यान्मे वरमङ्गलानि नितरां भव्यैर्जनैः सेवितः ॥१२८॥

इति कथाकोशे सत्तपोद्योतिनी श्रीसंजयन्तमुनेः कथा समाप्ता ।

६. अंजनचोरस्य कथा

श्रीसर्वज्ञपदाम्भोजं नत्वा सारसुखप्रदम् । निःशङ्कितगुणोद्योते चरित्रं रचयाम्यहम् ॥१॥
 अत्रैव भरतक्षेत्रे देशे मगधसंज्ञके । श्रेष्ठी राजगृहे नाम्ना नगरे जिनदत्तवाक् ॥२॥
 श्रीमज्जिनेन्द्रपादाब्जसेवनैकमधुव्रतः । दानपूजाव्रताद्युक्तश्रावकाचारमण्डितः ॥३॥
 एकदाऽसौ चतुर्दश्यां रात्रौ रौद्रे श्मशानके । त्रिधा वैराग्यसंयुक्तः कायोत्सर्गेण संस्थितः ॥४॥
 तदामितप्रभो देवो जिनभक्तिपरायणः । अन्यो विद्युत्प्रभो देवो मिथ्यादृष्टिमतेक्षणः ॥५॥

इसे कभी विद्या की सिद्धि न हो ।” इसके बाद धरणेन्द्र अपने भाई संजयन्त मुनि के मृत शरीर की बड़ी भक्ति के साथ पूजा कर अपने स्थान पर चला गया ॥१२२-१२६॥

इस प्रकार उत्कृष्ट तपश्चर्या करके श्री संजयन्त मुनि ने अविनाशी मोक्षश्री को प्राप्त किया । वे हमें भी उत्तम सुख प्रदान करें ॥१२७॥

श्रीमल्लिभूषण गुरु कुन्दकुन्दाचार्य की परम्परा में हुए । जिनभगवान् के चरण कमलों के भ्रमर थे, उनकी भक्ति में सदा लीन रहते थे, सम्यग्ज्ञान के समुद्र थे, पवित्र चारित्र के धारक थे और संसार समुद्र से भव्य जीवों को पार करने वाले थे । वे ही मल्लिभूषण गुरु मुझे भी सुख-सम्पत्ति प्रदान करें ॥१२८॥

६. अंजनचोर की कथा

सुख के देने वाले श्रीसर्वज्ञ वीतराग भगवान् के चरण कमलों को नमस्कार कर अंजनचोर की कथा लिखता है, जिसने सम्यग्दर्शन के निःशङ्कित अंग का उद्योत किया है ॥१॥

भारतवर्ष-मगधदेश के अन्तर्गत राजगृह नामक शहर में एक जिनदत्त सेठ रहता था । वह बड़ा धर्मात्मा था । वह निरन्तर जिनभगवान् की पूजा करता, दीन-दुखियों को दान देता, श्रावकों के व्रतों का पालन करता और सदा शान्त और विषयभोगों से विरक्त रहता । एक दिन जिनदत्त चतुर्दशी के दिन आधी रात के समय श्मशान में कायोत्सर्ग ध्यान कर रहा था । उस समय वहाँ दो देव आये । उनके नाम अमितप्रभ और विद्युत्प्रभ थे । अमितप्रभ जैनधर्म का विश्वासी था और विद्युत्प्रभ दूसरे धर्म का ।

ताभ्यां परस्परं धर्मपरीक्षार्थं महीतले। गच्छद्भ्यां तपसो मूढश्चालितो जमदग्निवाक् ॥६॥
तत्रागत्य श्मशाने च तं दृष्ट्वा श्रेष्ठिनं शुभम्। अमितप्रभदेवोऽसौ संजगाद प्रमोदतः ॥७॥
अहो विद्युत्प्रभोत्कृष्टचारित्रप्रतिपालकाः। तिष्ठन्तु मुनयो मेत्र किन्त्वैनं श्रावकोत्तमम् ॥८॥
चालय त्वं महाध्यानात्सामर्थ्यं वर्तते यदि। ततो विद्युत्प्रभाख्येन देवेनातीव दुस्सहः ॥९॥
तस्योपसर्गकश्चक्रे कृष्णारात्रौ महास्तदा। स धीरश्चलितो नैव सदृष्टिर्निजयोगतः ॥१०॥
प्रभातसमये जाते ततस्ताभ्यां सुभक्तितः। स्वमायामुपसंहृत्य तं प्रशस्य मुहुर्मुहुः ॥११॥
आकाशगामिनीं विद्यां दत्त्वा तस्मै सुदृष्टये। प्रोक्तमेवं च भो श्रेष्ठिन्सिद्धा विद्या तवाद्भुता ॥१२॥
इयं ते वचनात्पञ्चनमस्कारविधानतः। अन्यस्य सुधियश्चापि सुधीः सिद्धा भविष्यति ॥१३॥
ततः सोपि लसद्दृष्टिः श्रेष्ठी विद्याप्रभावतः। अकृत्रिमे जिनागारे स्वर्गमोक्षसुखप्रदे ॥१४॥
नित्यं श्रीजिनपूजार्थं महाभक्त्या प्रयाति च। सोमदत्तेन सम्पृष्टो वटुकेन तदा मुदा ॥१५॥
अहो स्वामिन्भवद्भिस्तु प्रातरुत्थाय नित्यशः। क्व गम्यते महाभागः जैनधर्मपरायणः ॥१६॥
तच्छ्रुत्वा जिनदत्तोसौ जगौ श्रेष्ठी विशिष्टवाक्। विद्यालाभस्तु मे जातस्तेनाऽहं भक्तितस्तराम् ॥१७॥

वे अपने-अपने स्थान से परस्पर के धर्म की परीक्षा करने को निकले थे। पहले उन्होंने एक पंचाग्नि तप करने वाले तापस की परीक्षा की। वह अपने ध्यान से विचलित हो गया। इसके बाद उन्होंने जिनदत्त को श्मशान में ध्यान करते देखा। तब अमितप्रभ ने विद्युत्प्रभ से कहा-प्रिय, उत्कृष्ट चारित्र के पालने वाले जिनधर्म के सच्चे साधुओं की परीक्षा की बात को तो जाने दो परन्तु देखते हो, वह गृहस्थ जो कायोत्सर्ग से खड़ा हुआ है, यदि तुममें कुछ शक्ति हो, तो तुम उसे ही अपने ध्यान से विचलित कर दो यदि तुमने उसे ध्यान से चला दिया तो हम तुम्हारा ही कहना सत्य मान लेंगे ॥२-९॥

अमितप्रभ से उत्तेजना पाकर विद्युत्प्रभ ने जिनदत्त पर अत्यन्त दुस्सह और भयानक उपद्रव किया, पर जिनदत्त उससे कुछ भी विचलित न हुआ और पर्वत की तरह खड़ा रहा। जब सबेरा हुआ तब दोनों देवों ने अपना असली वेष प्रकट कर बड़ी भक्ति के साथ उसका खूब सत्कार किया और बहुत प्रशंसा कर जिनदत्त को एक आकाशगामिनी विद्या दी। इसके बाद वे जिनदत्त से यह कहकर कि श्रावकोत्तम! तुम्हें आज से आकाशगामिनी विद्या सिद्ध हुई; तुम पंच नमस्कार मंत्र की साधना विधि के साथ इसे दूसरों को प्रदान करोगे तो उन्हें भी यह सिद्ध होगी-अपने स्थान पर चले गये ॥१०-१३॥

विद्या की प्राप्ति से जिनदत्त बड़ा प्रसन्न हुआ। उसकी अकृत्रिम चैत्यालयों के दर्शन करने की इच्छा पूरी हुई। वह उसी समय विद्या के प्रभाव से अकृत्रिम चैत्यालय के दर्शन करने को गया और खूब भक्तिभाव से उसने जिनभगवान् की पूजा की, जो कि स्वर्ग-मोक्ष को देने वाली है ॥१४॥

इसी प्रकार अब जिनदत्त प्रतिदिन अकृत्रिम जिनमन्दिरों के दर्शन करने के लिए जाने लगा। एक दिन वह जाने के लिए तैयार खड़ा हुआ था कि उससे एक सोमदत्त नाम के माली ने पूछा-आप प्रतिदिन सबेरे ही उठकर कहाँ जाया करते हैं? उत्तर में जिनदत्त सेठ ने कहा-मुझे दो देवों की कृपा से

शाश्वतेषु जिनेन्द्राणां हेमचैत्यालयेषु च। नित्यं ब्रजामि पूजार्थं महाशर्मविधायिषु ॥१८॥
 सोमदत्तस्ततः प्राह विद्यां मे देहि भो सुधीः। येनाहं भवता सार्धं सद्गन्धकुसुमादिकम् ॥१९॥
 गृहीत्वा तत्र चागत्य पूजां श्रीमज्जिनेशिनाम्। करोमि वन्दनां भक्तिं भवत्पुण्यप्रसादतः ॥२०॥
 ततः श्रीजिनदत्तेन श्रेष्ठिना तस्य निर्मलः। दत्तो विद्योपदेशस्तु तत्समादाय सोपि च ॥२१॥
 रात्रौ कृष्णचतुर्दश्यां श्मशाने भूरिभीतिदे। वटाद्रौ पूर्वशाखायां शतपादैर्वसूतरैः ॥२२॥
 अलंकृतं समारोप्य दर्भशिक्यं तथा तरोः। अधोभागे च शस्त्राणि वह्निज्वालोपमानि च ॥२३॥
 ऊर्ध्ववक्त्राणि संस्थाप्य कृत्वा चार्चा पुष्पादिभिः। षष्ठोपवाससंयुक्तः स्थित्वा शिक्ये सुखप्रदम् ॥२४॥
 सारं पञ्चनमस्कारं प्रोचैरुच्चारयंस्ततः। एकैकं दर्भपादं तं छिन्दंश्छुरिकया पुनः ॥२५॥
 अधस्थितं समालोक्य सुतीक्ष्णं शस्त्रसञ्चयम्। संभीतश्चिन्तयामास सोमदत्तः स्वचेतसि ॥२६॥
 यदीदं श्रेष्ठिनो वाक्यमसत्यं भवति ध्रुवम्। तदा मे प्राणनाशस्तु संभवत्येव साम्प्रतम् ॥२७॥
 इत्यादिसंशयोपेतश्चटनोत्तरणादिकम्। करोति स्म स मूढात्मा क्वसिद्धिर्निश्चयं विना ॥२८॥
 येषां श्रीमज्जिनेन्द्राणां स्वर्गमोक्षसुखप्रदे। वाक्येपि निश्चयो नास्ति तेषां सिद्धिर्न भूतले ॥२९॥

आकाशगामिनी विद्या की प्राप्ति हुई है। सो उसके बल से सुवर्णमय अकृत्रिम जिनमन्दिरों की पूजा करने के लिए जाया करता हूँ, जो कि सुख शान्ति को देने वाली है। तब सोमदत्त ने जिनदत्त से कहा— प्रभो, मुझे भी विद्या प्रदान कीजिये न ? जिससे मैं भी अच्छे सुन्दर सुगन्धित फूल लेकर प्रतिदिन भगवान् की पूजा करने को जाया करूँ और उसके द्वारा शुभकर्म उपार्जन करूँ। आपकी बड़ी कृपा होगी यदि आप मुझे विद्या प्रदान करेंगे ॥१५-२०॥ पीठ

सोमदत्त की भक्ति और पवित्रता को देखकर जिनदत्त ने उसे विद्या साधन करने की रीति बतला दी। सोमदत्त उससे सब विधि ठीक-ठीक समझकर विद्या साधने के लिए कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी की अन्धेरी रात में श्मशान में गया, जो कि बड़ा भयंकर था। वहाँ उसने एक बड़ की डाली में एक सौ आठ लड़ी का एक दूबा का सींका बाँधा और उसके नीचे अनेक भयंकर तीखे-तीखे शस्त्र सीधे मुँह गाड़ कर उनकी पुष्पादि से पूजा की। इसके बाद वह सींके पर बैठकर पंच नमस्कार मंत्र जपने लगा। मंत्र पूरा होने पर जब सींका के काटने का समय आया और उसकी दृष्टि चमचमाते हुए शस्त्रों पर पड़ी तब उन्हें देखते ही वह कांप उठा। उसने विचारा यदि जिनदत्त ने मुझे झूठ कह दिया हो तब तो मेरे प्राण ही चले जायेंगे; यह सोचकर वह नीचे उतर आया। उसके मन में फिर कल्पना उठी कि भला जिनदत्त को मुझसे क्या लेना है जो वह झूठ कहकर मुझे ऐसे मृत्यु के मुख में डालेगा ? और फिर वह तो जिनधर्म का परम श्रद्धालु है, उसके रोम-रोम में दया भरी हुई है, उसे मेरी जान लेने से क्या लाभ ? इत्यादि विचारों से अपने मन को सन्तुष्ट कर वह फिर सींके पर चढ़ा, पर जैसे ही उसकी दृष्टि फिर शस्त्रों पर पड़ी कि वह फिर भय के मारे नीचे उतर आया। इसी तरह वह बार-बार उतरने चढ़ने लगा, पर उसकी हिम्मत सींका काट देने की नहीं हुई। सच है जिन्हें स्वर्ग-मोक्ष का सुख देने वाले जिनभगवान् के वचनों पर विश्वास नहीं, मन में उन पर निश्चय नहीं, उन्हें संसार में कोई सिद्धि कभी प्राप्त नहीं होती ॥२१-२९॥

तस्मिन्नेव क्षणे रात्रौ गणिकाञ्जनसुन्दरी। चौरमञ्जनकं प्राह शृणु त्वं प्राणवल्लभः ॥३०॥
 प्रजापालमहीभर्तुः कनकाख्या प्रियोत्तमा। तस्याः कण्ठे मया हारो दृष्टश्चातीव सुन्दरः ॥३१॥
 तं समानीय चेद्भारं ददासि मम साम्प्रतम्। भर्ता मे त्वं भवस्येव नान्यथेति महाभटः ॥३२॥
 तच्छ्रुत्वाञ्जनचौरोसौ तस्यां संसक्तमानसः। ततो गत्वा तमादाय हारं रात्रौ स्वबुद्धितः ॥३३॥
 समागच्छंस्तदा ज्ञात्वा हारोद्योतेन कर्कशैः। कोटपालादिभिर्गाढं ध्रियमाणः सुनिर्दयैः ॥३४॥
 ततो हारं परित्यक्त्वा नष्टागत्य श्मशानके। तथाभूतं तमालोक्य सोमदत्तं सुकातरम् ॥३५॥
 पृष्ट्वा सम्बन्धकं तस्मान्मन्त्रमादाय चोत्तमम्। शिष्यमारुह्य निःशङ्कस्तेनैव विधिना मुदा ॥३६॥

उसी रात को एक और घटना हुई वह उल्लेख योग्य है और खासकर उसका इसी घटना से सम्बन्ध है। इसलिए उसे लिखते हैं। वह इस प्रकार है—

इधर तो सोमदत्त सशंक होकर क्षणभर में वृक्ष पर चढ़ता और क्षणभर में उस पर से उतरता था और दूसरी ओर इसी समय माणिकांजन सुन्दरी नाम को एक वेश्या ने अपने पर प्रेम करने वाले एक अंजन नाम के चोर से कहा—प्राणवल्लभ, आज मैंने प्रजापाल महाराज की कनकवती नाम की पट्टरानी के गले में रत्न का हार देखा है। वह बहुत ही सुन्दर है। मेरा तो यह भी विश्वास है कि संसार भर में उसकी तुलना करने वाला कोई और हार होगा ही नहीं। सो आप उसे लाकर मुझे दीजिये, तब ही आप मेरे स्वामी हो सकेंगे अन्यथा नहीं ॥३०-३२॥

माणिकांजन सुन्दरी की ऐसी कठिन प्रतिज्ञा सुनकर पहले तो वह कुछ हिचका, पर साथ ही उसके प्रेम ने उसे वैसा करने को बाध्य किया। वह अपने जीवन की भी कुछ परवाह न कर हार चुरा लाने के लिए राजमहल पहुँचा और मौका देखकर महल में घुस गया। रानी के शयनागार में पहुँचकर उसने उसके गले में से बड़ी कुशलता के साथ हार निकाल लिया। हार लेकर वह चलता बना। हजारों पहरेदारों को आँखों में धूल डालकर साफ निकल जाता, पर अपने दिव्य प्रकाश से गाढ़े से गाढ़े अन्धकार को भी नष्ट करने वाले हार ने उसे सफल प्रयत्न नहीं होने दिया। पहरे वालों ने उसे हार ले जाते हुए देख लिया। वे उसे पकड़ने को दौड़े। अंजनचोर भी खूब जी छोड़कर भागा, पर आखिर कहाँ तक भाग सकता था? पहरेदार उसे पकड़ लेना ही चाहते थे कि उसने एक नई युक्ति की। वह हार को पीछे की ओर जोर से फेंक कर भागा। सिपाही लोग तो हार उठाने में लगे और इधर अंजनचोर बहुत दूर तक निकल आया। सिपाहियों ने तब भी उसका पीछा न छोड़ा। वे उसका पीछा किये चले ही गये। अंजनचोर भागता-भागता श्मशान की ओर जा निकला, जहाँ जिनदत्त के उपदेश से सोमदत्त विद्या साधन के लिए व्यग्र हो रहा था। उसका यह भयंकर उपक्रम देखकर अंजन ने उससे पूछा कि तुम यह क्या कर रहे हो? क्यों अपनी जान दे रहे हो? उत्तर में सोमदत्त ने सब बातें उसे बता दीं, जैसी कि जिनदत्त ने उसे बतलाई थीं। सोमदत्त की बातों से अंजन को बड़ी खुशी हुई। उसने सोचा कि सिपाही

वाक्यं मे श्रेष्ठिनो सत्यं प्रमाणं च तदेव हि। इत्युक्त्वा संचिनन्ति स्म शिष्यपादानशेषतः ॥३७॥
 एकवारं सुधीः सोपि यावन्नोत्पतति ध्रुवम्। शस्त्रकेषु तदागत्य सा विद्याकाशगामिनी ॥३८॥
 आदेशं देहि देवेति तं धृत्वा भक्तितो जगौ। ततः संप्राह चौरौसौ परमानन्दनिर्भरः ॥३९॥
 यत्र मेरौ जिनेन्द्राणां प्रतिमाः पूजयन्स्थितः। श्रेष्ठी सन्तिष्ठते भक्त्या तत्र मां प्रापय ध्रुवम् ॥४०॥
 ततस्तया समादाय श्रेष्ठिनः सोग्रतो धृतः। जैनधर्मप्रसादेन किं शुभं यत्र जायते ॥४१॥
 तं नत्वा भक्तितः प्राह निर्भयोञ्जनसंज्ञकः। भो श्रेष्ठिंस्त्वत्प्रसादेन प्राप्ता विद्या मया यथा ॥४२॥
 आकाशगामिनी धीरः तथा मे करुणार्णव। संमन्त्रो दीयते येन शीघ्रं सिद्धो भवाम्यहम् ॥४३॥
 परोपकारिणा तेन श्रेष्ठिना गुणशालिना। चारणस्य मुनेः पार्श्वे जैनीं दीक्षां शिवप्रदाम् ॥४४॥
 ग्राहितः सुतरां सोपि तामुच्चैः प्रतिपालयन्। क्रमात्कैलासमारूढो लोकालोकप्रकाशकम् ॥४५॥
 केवलज्ञानमुत्पाद्य भक्त्या त्रैलोक्यपूजितः। शेषकर्मक्षयं कृत्वा प्राप्तवान्मोक्षमक्षयम् ॥४६॥

लोग तो मुझे मारने के लिए पीछे आ ही रहे हैं और वे अवश्य मुझे मार भी डालेंगे क्योंकि मेरा अपराध कोई साधारण अपराध नहीं है। फिर यदि मरना ही है तो धर्म के आश्रित रहकर ही मरना अच्छा है। यह विचार कर उसने सोमदत्त से कहा—बस इसी थोड़ी-सी बात के लिए इतने डरते हो? अच्छा लाओ, मुझे तलवार दो, मैं भी तो जरा आजमा लूँ। यह कहकर उसने सोमदत्त से तलवार ले ली और वृक्ष पर चढ़कर सींके पर जा बैठा। वह सींके को काटने के लिए तैयार हुआ कि सोमदत्त के बताये मन्त्र को भूल गया। पर उसकी वह कुछ परवाह न कर और केवल इस बात पर विश्वास करके कि “जैसा सेठ ने कहा—उसका कहना मुझे प्रमाण है।” उसने निःशंक होकर एक ही झटके में सारे सींके को काट दिया। काटने के साथ ही जब तक वह शस्त्रों पर गिरता तब तक आकाशगामिनी विद्या ने आकर उससे कहा—देव, आज्ञा कीजिये, मैं उपस्थित हूँ। विद्या को अपने सामने खड़ी देखकर अंजनचोर को बड़ी खुशी हुई। उसने विद्या से कहा, मेरे पर्वत पर जहाँ जिनदत्त सेठ भगवान् की पूजा कर रहा है, वहीं मुझे पहुँचा दो। उसके कहने के साथ ही विद्या ने उसे जिनदत्त के पास पहुँचा दिया। सच है, जिनधर्म के प्रसाद से क्या नहीं होता? ॥३३-४१॥

सेठ के पास पहुँचकर अंजन ने बड़ी भक्ति के साथ उन्हें प्रणाम किया और वह बोला—हे दया के समुद्र! मैंने आपकी कृपा से आकाशगामिनी विद्या तो प्राप्त की, पर अब आप मुझे कोई ऐसा मंत्र बतलाइये, जिससे मैं संसार समुद्र से पार होकर मोक्ष में पहुँच जाऊँ, सिद्ध हो जाऊँ ॥४२-४३॥

अंजन की इस प्रकार वैराग्य भरी बातें सुनकर परोपकारी जिनदत्त ने उसे एक चारणऋद्धि के धारक मुनिराज के पास ले जाकर उनसे जिनदीक्षा दिलवा दी। अंजनचोर साधु बनकर धीरे-धीरे कैलाश पर जा पहुँचा। वहाँ खूब तपश्चर्या कर ध्यान के प्रभाव से उसने घातिया कर्मों का नाश किया और केवलज्ञान प्राप्त कर वह त्रैलोक्य द्वारा पूजित हुआ। अन्त में अघातिया कर्मों का भी नाश कर अंजन मुनिराज ने अविनाशी, अनन्त गुणों के समुद्र मोक्षपद को प्राप्त किया ॥४४-४६॥

निःशंकितगुणोनोच्चैरञ्जनोपि निरञ्जनः। संजातस्तु ततः सोपि पालनीयो बुधोत्तमैः ॥४७॥
सद्रत्नत्रयमण्डितोतिचतुरः श्रीमूलसङ्गाग्रणीः श्रीभट्टारकमल्लिभूषणगुरुः सद्बोधसिन्धुर्महान्।
तच्छिष्यः कुमताद्रिभेदनपविः श्रीसिंहनन्दीमुनिर्जीयाद्भव्यसरोजनर्मलरविः स्वाचार्यवर्यः सताम् ॥४८॥
इति कथाकोशे निःशङ्किताङ्गेञ्जनचोरस्य कथा समाप्ता।

७. अनन्तमत्याः कथा

पादपद्मद्वयं नत्वा शर्मदं भक्तितोर्हताम्। निष्काक्षितगुणोद्योते वक्ष्येऽनन्तमतीकथाम् ॥१॥
अङ्गदेशेत्र विख्याते चारुः चम्पापुरीप्रभुः। वसुवर्धननामाभूद्राज्ञी लक्ष्मीमती सती ॥२॥
प्रियदत्तोऽभवच्छ्रेष्ठी परमेष्ठिप्रतीतिवान्। तद्भार्याङ्गवती नाम्ना धर्मकर्मविचक्षणाम् ॥३॥
तयोः पुत्री द्वयोर्जाता नाम्नानन्तमती सती। रूपलावण्यसौभाग्यगुणरत्नाकरक्षितिः ॥४॥
एकदा प्रियदत्तेन धर्मकीर्तिमुनीश्वरम्। नत्वा नन्दीश्वराष्टम्यां ब्रह्मचर्यं व्रतोत्तमम् ॥५॥
गृहीत्वाष्टदिनान्युच्चैः क्रीडया ग्राहिता सुता। सत्यं सतां विनोदोपि भवेत्सन्मार्गसूचकः ॥६॥

सम्यग्दर्शन के निःशंकित गुण का पालन कर अंजनचोर भी निरंजन हुआ, कर्मों के नाश करने में समर्थ हुआ। इसलिए भव्य पुरुषों को तो निःशंकित अंग का पालन करना ही चाहिए ॥४७॥

मूलसंघ में श्रीमल्लिभूषण भट्टारक हुए। वे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप उत्कृष्ट रत्नों से अलंकृत थे, बुद्धिमान् थे और ज्ञान के समुद्र थे। सिंहनन्दी मुनि उनके शिष्य थे। वे मिथ्यात्वमतरूपी पर्वतों को तोड़ने के लिए वज्र के समान थे, बड़े पाण्डित्य के साथ वे अन्य सिद्धान्तों का खण्डन करते थे और भव्य पुरुष रूपी कमलों को प्रफुल्लित करने के लिए वे सूर्य के समान थे। वे चिरकाल तक जीयें उनका यशःशरीर इस नश्वर संसार में सदा बना रहे ॥४८॥

७. अनन्तमती की कथा

मोक्ष सुख के देने वाले श्री अरिहन्त भगवान् के चरणों को भक्तिपूर्वक नमस्कार कर अनन्तमती की कथा लिखता हूँ, जिसके द्वारा सम्यग्दर्शन के निःकाक्षित गुण का प्रकाश हुआ है ॥१॥

संसार में अंगदेश बहुत प्रसिद्ध देश है। जिस समय की हम कथा लिखते हैं, उस समय उसकी प्रधान राजधानी चंपापुरी थी। उसके राजा थे वसुवर्धन और उनकी रानी का नाम लक्ष्मीमती था। वह सती थी, गुणवती थी और बड़ी सरल स्वभाव की थी। उनके एक पुत्र था। उसका नाम था प्रियदत्त। प्रियदत्त को जिनधर्म पर पूर्ण श्रद्धा थी। उसकी गृहिणी का नाम अंगवती था। वह बड़ी धर्मात्मा थी, उदार थी। अंगवती के एक पुत्री थी। उसका नाम अनन्तमती था। वह बहुत सुन्दर थी, गुणों की समुद्र थी ॥२-४॥

अष्टाह्निका पर्व आया। प्रियदत्त ने धर्मकीर्ति मुनिराज के पास आठ दिन के लिए ब्रह्मचर्य व्रत लिया। साथ ही में उसने अपनी प्रिय पुत्री को भी विनोद वश होकर ब्रह्मचर्य व्रत दे दिया। कभी-कभी